अंधकारमय भविष्य की ओर

बिहार की स्कूली शिक्षा

आलोक रंजन

न्यायालय में शिक्षा संबंधी मुद्दे का आना शिक्षा का विमर्श के केंद्र में आ जाना होता है और इसी बहाने उस पर बहस की गुंजाइश बन जाती है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखें तो शिक्षा चर्चा के प्राथमिक मुद्दों में से नहीं आती है। किसी आदर्श बहस या परिचर्चा में यह शब्द बार-बार उभर आए तो गनीमत है लेकिन आम फहम चर्चा में इसका आना भारत में चलन में नहीं है। बिहार के नियोजित शिक्षकों के खिलाफ राज्य सरकार का सर्वोच्च न्यायालय में जाना शिक्षा को कम से कम आम बिहारी परिवारों में चर्चा का विषय बना चुका है और बहुत संभावना है कि देश भर में संविदा पर काम कर रहे शिक्षकों को यह अपना भविष्य नजर आ रहा हो। राज्य सरकार का अपने यहां काम कर रहे नियोजित शिक्षकों के खिलाफ अदालत का रास्ता लेना दूसरे तरह से भी महत्वपूर्ण है। सरकार शिक्षा को आर्थिक संक्रिया की तरह देखती है। आर्थिक संक्रिया, मुनाफे और हानि के दायरे में ही देखी जा सकती है। इसमें राज्य के लगभग साढ़े तीन लाख नियोजित शिक्षकों के एक जैसे काम के बदले एक जैसा वेतन और सुविधाएं प्राप्त करने की उम्मीद का समाप्त हो जाना एक गहरे असंतोष की शक्ल ले सकता है। नियोजित शिक्षकों के इस सामूहिक असंतोष को इस लेख के माध्यम से समझा जाएगा और यह भी देखने का प्रयास होगा कि यह कक्षा की सामान्य गतिविधियों को कैसे प्रभावित करता है। बिहार के नियोजित शिक्षक की यह लड़ाई उतनी ही पुरानी है जितनी बिहार में शिक्षक भर्ती की यह नवीन व्यवस्था। ये शिक्षक लगातार अपनी मांगों को लेकर धरना-प्रदर्शन करते रहे हैं साथ ही अदालती रास्ता भी अपनाते रहे हैं। उनकी लड़ाई में अहम मोड़ पटना उच्च न्यायालय के फैसले से आया जिसमें राज्य सरकार को इन्हें समान कार्य के लिए समान वेतन और भत्ते देने का निर्देश दिया गया था। उच्च न्यायालय का यह फैसला बिहार सरकार पर बहुत बड़ा वित्तीय बोझ डालने वाला था सो सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का विकल्प चुना।

नियोजन शब्द बिहार में काफी प्रचलित है और इसे आम तौर पर अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता। यह शब्द आम जनजीवन में हीनता का प्रतीक है लेकिन सरकारी तौर पर यह एक 'रामबाण' या 'संजीवनी' के रूप में स्वीकृत है। 2015 में आई युनेस्को की ग्लोबल मॉनिटरिंग रिपोर्ट भी यह मान चुकी है कि विकासशील देशों की सरकारें अपने खर्च को कम करने के लिए अपने यहां इस विधि से शिक्षकों की नियुक्ति करने लगी हैं। अर्थात सरकारी तौर पर खर्च कम करने का यह एक सर्वस्वीकृत माध्यम बन चुका है। खर्च में कटौती की यह तरकीब ही नियोजित शिक्षकों की नियुक्ति का आधार बनती है। बिहार सरकार ने बड़े पैमाने पर इस तरह की भर्ती की और देखते ही देखते 2006 से 2013 तक प्राथमिक स्तर पर शिक्षकों की संख्या दोगुनी हो गई। कम समय में शिक्षक-छात्र अनुपात को कम करने का यह सबसे कारगर तरीका साबित होता है।

स्थानीय निकायों को शिक्षकों की नियुक्ति में भागीदारी देने से अध्यापन में स्थानीय लोगों के आने का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस तरह से देखा जाये तो यह शानदार तरीका था जिसने बिहार में रोजगार की एक बयार बहा दी। भर्ती होने वाले लोग किसी भी तरह से व्यवस्था का हिस्सा बनना चाह रहे थे। उन्हें लगता था कि बाद में वे सरकार पर दबाव डालकर अपने लिए बेहतर सुविधाएं और नियमित शिक्षक की तरह की नियमितता हासिल कर लेंगे। यह व्यवस्था रोजगार सृजन का बड़ा माध्यम बनी और सरकार को भी अपनी पीठ थपथपाने का मौका मिल गया। परिणामस्वरूप आज बिहार में साढ़े तीन लाख नियोजित शिक्षक हैं।

राज्य सरकार के आंकड़ों और बयानों को देखें तो विद्यालयों में विद्यार्थियों की उपस्थिती बढ़ने के संकेत मिलते हैं। इस संकेत के इतर बिहार के नियोजित शिक्षकों की नियुक्ति को देखना जरूरी हो जाता है। यह व्यवस्था सरकारी और सरकार द्वारा वित्त पोषित विद्यालयों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए बहुत लाभकारी सिद्ध नहीं हो रही है। इसे समझने के लिए इसके पीछे के कारण देखे जा सकते हैं। जिनमें ज्यादातर नियोजन के कारण ही सामने आते हैं। यह व्यवस्था जिस पुरानी व्यवस्था के बरक्स लाई गई उसमें चयन से पहले तक एक अध्यापक को परखने की कई शर्तें थीं। निश्चित रूप से केवल उन शर्तों को पूरा करके ही कोई आदर्श शिक्षक नहीं बन सकता लेकिन वे अधिकतम संभावना खोज निकालने वाली शर्तें थीं। नियोजन के क्रम में बड़ी-बड़ी धांधलियां सामने आईं। पैसे लेकर नियुक्तियां, फर्जी डिग्री वालों की नियुक्तियां और नियुक्त लोगों की विषयों की समझ आदि वाले कई मुद्दे पिछले सालों में उभरे। कुछ लोगों की सेवा भी निरस्त हुई। लेकिन समग्र रूप में देखा जाये तो इन सब ने बिहार की विद्यालयी शिक्षा को गंभीर रूप से प्रभावित किया है। नियोजन वाले शिक्षकों के माध्यम से सरकार दूरदराज के क्षेत्रों में विद्यालय को लेकर तो पहुंच गई लेकिन वह शिक्षा के स्तर को उठाने में नाकाफी ही रहा। 2014 में प्रथम संस्था द्वारा किए गए देशव्यापी अध्ययन में सामने आया कि ग्रामीण क्षेत्र के 5 वीं के 47 प्रतिशत विद्यार्थी केवल दूसरी कक्षा की किताब पढ़ सकते हैं और केवल 25.6 प्रतिशत विद्यार्थी ही तीन अंकों की संख्या को एक अंक से भाग देने में सक्षम हैं। यह अध्ययन 'असर रिपोर्ट' के नाम से उपलब्ध है जिसमें बिहार के विद्यालय भी शामिल हैं। बिहार के विद्यालयों में रेखांकित करने योग्य कोई विशेषता नहीं देखी गई। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने की दिशा में बिहार सरकार द्वारा प्रयुक्त यह व्यवस्था अपने वेतन के ढांचे और नियुक्ति प्रक्रिया को लेकर दोषपूर्ण है। इसे समझने के लिए स्थानीय युवाओं के इस नौकरी के प्रति रुझान को समझना जरूरी है। बिहार और इससे बाहर पढ़-लिख रहे युवा इस नौकरी को अपनी प्राथमिकता में नहीं रखते। यह उनकी अंतिम शरणस्थली है। बिहार जैसा राज्य जहां के युवाओं में सरकारी नौकरी के प्रति झुकाव बहुत ज्यादा रहता है वहां यदि जी-तोड़ मेहनत के बाद पूरे वेतनमान की नौकरी मिल जाती है तो उसे श्रेयस्कर माना जाता है। कड़ी मेहनत के बाद भी सरकारी नौकरियों की कम संख्या के कारण हजारों युवा वंचित रह जाते हैं। उस स्थिति में अंतिम विकल्प के रूप में इस तरह की नियुक्ति को आजमाया जाता है। नियोजन पर शिक्षक भर्ती करने की जब शुरुआत हुई थी तब से लेकर आज तक इसमें ज्यादा अंक पाने वालों को ही तरजीह दी जाती रही है। परीक्षा के अभाव में उम्मीदवारों की छंटनी का एकमात्र तरीका यही रह जाता है। इससे बहुत अच्छे अंक वाले लोगों की नियुक्ति ही हो पाती है। अच्छे अंक या कोई बड़ी डिग्री एक बेहतर अध्यापक होने की गारंटी नहीं हैं। पढ़ाने संबंधी कुशलता का अभाव तो रहता ही है साथ में शिक्षण से संबंधित प्रशिक्षण की कमी भी रहती है। उनकी इसी स्थिति पर प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री प्रोफेसर कृष्ण कुमार ने इन्हें 'बेयरफुट डॉक्टर' कहा था। अरुचिकर काम, प्रशिक्षण का अभाव और सेवा से मिलने वाले वेतन के प्रति असंतुष्टि से कक्षा कक्ष में एक अध्यापक के प्रदर्शन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इनमें से कोई एक भी एक कक्षा के भीतर की स्थिति को प्रभावित करने के लिए काफी है यहां तो तीनों एकसाथ काम करते हैं। ऐसे में महत्वाकांक्षी नियोजित शिक्षक आय के दूसरे विकल्पों को भी खोजने लगते हैं।

यह जानने के लिए किसी गहन शोध की आवश्यकता नहीं है कि, एक ही विद्यालय में एक ही कार्य कर रहे दो अलग-अलग लोगों के वेतन में बड़ा विभेद हो तो कम वेतन प्राप्त करने वाले व्यक्ति पर इसका प्रभाव नकारात्मक ही पड़ेगा। उसकी कार्यक्षमता प्रभावित होगी। नियोजित शिक्षकों के मामले में यह देखा गया है कि उनके वेतन और काम की प्रकृति के हिसाब से उनकी सामाजिक स्वीकृति वह नहीं है जो नियमित शिक्षकों की है। उनके साथ लगा 'नियोजन वाले शिक्षक' का ठप्पा उनकी सामाजिक स्वीकृति को स्पष्ट करता है। यह कहना और सोचना गलत ही होगा कि इन सबसे उनके व्यक्तित्व और उनकी कार्यक्षमता प्रभावित नहीं होती। कम पैसे पर काम करना उन्हें दूसरे अन्य काम करने के लिए बाध्य करता है और उस स्थिति में जो समय विद्यालय व विद्यालय की तैयारी के लिए समर्पित होना चाहिए था वह आय के अन्य विकल्पों की तलाश में चला जाता है। इससे कक्षाओं का प्रभावित होना सामान्य बात है। नियोजित शिक्षकों के कम और असमान वेतन ने बिहार के विद्यालयी वातावरण को काफी प्रभावित किया है और इस वजह से अध्यापन के लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं की जा सकती।

नियोजित शिक्षकों को निराश करने के साथ-साथ बिहार सरकार और सर्वोच्च न्यायालय ने शिक्षा पर भी गंभीर चोट की है। यहां सुप्रीम कोर्ट में बिहार सरकार की दलील को देखना महत्वपूर्ण है। सरकार कहती है कि नियमित शिक्षकों की भर्ती में समय लगता है, दूसरे राज्यों के लोग आ जाते हैं फिर ट्रांसफर पोस्टिंग की समस्या आ जाती है इसलिए सरकार नियमित शिक्षकों की नियुक्ति नहीं करना चाहती। ये तर्क बचकाने हैं। यह सारी कवायद पैसे बचाने की है। नियमित शिक्षकों की भर्ती में समय लगने वाला तर्क मजबूत नहीं है। नियुक्तियों में समय लगता ही है और सरकारी तंत्र यदि चाहे तो उस प्रक्रिया को तेजी से भी सम्पन्न कर सकता है। सरकार हर नियुक्ति के लिए एक उपयुक्त समय सीमा तय कर सकती है। इसके बाद इस तर्क के दूसरे पहलू को देखें तो सरकार जिसे उपलब्धि बता रही है वह एक खामी के रूप में सामने आती है। राज्य सरकार ने नियोजित शिक्षकों की जितनी भी भर्तियां की उनके योगदान को मापने की, विद्यार्थियों में विषय की समझ की वृद्धि और उसके विकास को समझने की कोई तरकीब विकसित नहीं की गई, न ही इस संबंध में नियोजित शिक्षकों पर कोई जिम्मेदारी डाली गई। बस कागजी खानापूर्तियां होती रहीं। ऐसे में सरकार यदि कम समय में बहुत सारे शिक्षकों की भर्ती कर संयुक्त राष्ट्र, भारत सरकार आदि निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त कर भी लेते हैं तो उसका प्रभाव कुछ भी नहीं है। समय की इस बचत का लाभ कम से कम बिहार की शिक्षा व्यवस्था को नहीं मिला। निश्चित रूप से विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ी है अब बड़ी संख्या में उन परिवारों से विद्यार्थी विद्यालय आने लगे हैं जहां से उनके आने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। लेकिन उन विद्यार्थियों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने के उद्देश्य से बिहार की शिक्षा व्यवस्था भटक गई है। राज्य सरकार की आर्थिक नीति में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा न होकर पैसे बचना प्रमुख है। नियोजित शिक्षकों पर जो शोध हुए हैं वे कहीं भी यह सुझाते प्रतीत नहीं होते कि नियुक्ति की यह व्यवस्था गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए उपयोगी है। सरकारी आंकड़ों को छोड़ कर गांव और शहरों के सरकारी विद्यालयों को देखने पर यह बात काफी स्पष्ट हो जाती है। ऐसे में सुप्रीम कोर्ट द्वारा सामान्य शिक्षक के काडर को खत्म करने की सिफारिश बिहार की शिक्षा व्यवस्था को गंभीर रूप से प्रभावित करेगी। विद्यालयी व्यवस्था में शिक्षक एक महत्वपूर्ण कड़ी है क्योंकि इससे छात्रों का भविष्य जुड़ा हुआ है। बिना प्रशिक्षण और बिना मानकों के की गई शिक्षकों की नियुक्ति ने पहले ही विद्यार्थियों की शिक्षा को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। आज बिहार के सरकारी विद्यालय बस मिड डे मील और विभिन्न योजनाओं के वितरण स्थल बनकर रह गए हैं। इस स्थिति में सुप्रीम कोर्ट का यह निर्णय बहुत ही निराशाजनक साबित होने वाला है।

विद्यार्थियों की बढ़ी हुई संख्या साक्षारता के प्रसार को दर्शाती है जो निश्चित रूप से बिहार जैसे राज्य के लिए खुशी की बात है। लेकिन साक्षरता दर के बढ़ने को शिक्षा में वृद्धि और विस्तार नहीं कहा जा सकता। यहां बिहार के समाज सामाजिक गतिकी को समझना जरूरी हो जाता है। सरकारी विद्यालयों में आने वाले विद्यार्थी आवश्यक रूप से वंचित

संसाधनों वाले वर्ग से आते हैं। ऐसे माता-पिता जिनके पास थोड़ी भी समृद्धि है वे अपने बच्चों को निजी पूंजी से संचालित विद्यालयों में ही भेजते हैं। बिहार में आर्थिक विपन्नता का एक लगभग जरूरी संबंध जाति से बनता है। एक जातिवादी समाज में तथाकथित ऊंची जातियों के बहुत कम विद्यार्थी सरकारी विद्यालय में जाते हैं वहीं शेष विद्यार्थी उनसे इतर जातियों से आते हैं। यहां यह समझना कठिन नहीं रह जाता कि, सरकारी विद्यालयों में शिक्षा में गुणवत्ता संबंधी सुधार से किन विद्यार्थियों को मदद मिलती! अध्यापक किसी भी विद्यालय की महत्वपूर्ण कड़ी होते हैं। उनकी नियुक्ति में रुचि, सेवा पूर्व प्रशिक्षण, चयन की मानक पूर्ण प्रक्रिया और समय-समय पर शिक्षण में हो रहे बदलावों को समझने के लिए सेवा कालीन प्रशिक्षण बहुत मायने रखते हैं। ऐसा कहना एक सरलीकरण ही होगा कि नियोजित शिक्षकों में से सारे शिक्षक इन मानकों पर खरे नहीं उतरते हैं लेकिन बिहार की शिक्षा में सिवाय विद्यार्थियों की बढ़ी संख्या के अलावा किसी गुणात्मक परिवर्तन की अनुपस्थिति नियोजन वाली शिक्षण व्यवस्था पर बड़े सवाल खड़ी करती है। बिहार की विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था को इस विकल्प के साथ रहते हुए लंबा वक्त हो गया है इसलिए अब इसके मूल्यांकन का वक्त आ गया है। यह मूल्यांकन सरकारी और सामाजिक सहभागिता दोनों ही तरह से जरूरी है।

शिक्षा को राजनीति से कभी अलग नहीं किया जा सकता। राजनीति शिक्षा को बहुत प्रभावित करती है। इसलिए राजनीतिक रूप से इस फैसले के प्रभाव का अनुमान लगाना कठिन नहीं है। करीब चार लाख नियोजित शिक्षक और उनके परिवार एक बड़ा वोट बैंक हैं। वोट बैंक की राजनीति के इस दौर में इन कर्मचारियों को उम्मीद थी कि लोकसभा चुनाव से पहले सरकार कुछ उनकी बात मानने के लिए तैयार हो जाएगी इसलिए वे सर्वोच्च न्यायालय से बाहर भी दबाव बना रहे थे। लेकिन लोकसभा चुनाव समाप्त होते न होते जो न्यायालय का निर्णय आया वह निराशाजनक रहा। वोट बैंक की राजनीति में दबाव समूह के रूप में इतनी बड़ी संख्या का होना मायने रखता है। इसलिए बिहार राज्य के विधान सभा चुनाव से पहले दबाव बनाने की प्रक्रिया फिर से शुरू होने की संभावना है और राज्य भर में इसकी गूंज उठने वाली है। लेकिन विडम्बना यह है कि वह गूंज शिक्षा के स्तर को लेकर नहीं बल्कि नियोजित शिक्षकों द्वारा अपने लिए कुछ हासिल करने के लिए होगी। अपने खर्च में कटौती करने वाली सरकार के लिए भी यह स्थिति सुखद ही होगी कि नियोजित शिक्षकों के वेतन में थोड़ी बहुत वृद्धि से खजाने पर वह बोझ नहीं पड़ेगा जो नियमित शिक्षकों के होने से पड़ता साथ ही लोकप्रियता भी हासिल होगी। यह दोनों ही पक्षों के लिए 'विन विन सिचुएशन' वाली स्थिति होगी। इससे शिक्षा का स्तर कितना प्रभावित होगा यह समझना कठिन नहीं है। ◆

लेखक परिचय : प्रारंभिक शिक्षा बिहार में तथा उच्च शिक्षा दिल्ली विश्वविद्यालय से। संप्रति केरल में अध्यापन।
संपर्क : alokranjan7@gmail.com